कामिनी

(एक कथागीत)

नरेन्द्र शर्मा

ग्रन्थ-संख्या—९३

प्रकाशक तथा विक्रेता

भारती-भण्डार

लीडर प्रेस,

प्रयाग

प्रथम संस्करण

सं० '९९,

मूल्य ॥।

मुद्रक—

कृष्णाराम मेहता,

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

भूमिका

'कामिनी', यह एक छोटी-सी प्रेम-कहानी है। भूमिका के रूप में मुझे कुछ अधिक कहना नहीं है। किन्तु फिर भी प्रचलित रीति के अनुसार और पाठकों को 'कामिनी' की मानसिक पृष्ठभूमि का कुछ परिचय देने के लिए, मैं यह दो शब्द कह देने को उत्सुक हूँ।

'कामिनी' की रचना देवली के नजरबन्द कैम्प में गत वर्ष नवम्बर-दिसम्बर महीनों में हुई थी। यह नहीं कि देवली कैम्प जेल की छाप प्रकट रूप से इस रचना पर पड़ी हो। किन्तु 'कामनी' की विषयवस्तु पर अप्रकट रूप से, बाहर की बड़ी दुनिया से दूर—देवली की उस छोटी दुनिया का प्रभाव अवश्य पड़ा होगा। 'कामिनी' की कथा का वातावरण विश्व-व्यापी युद्ध के प्रकोप से थर थर काँपती हुई दुनिया से बहुत भिन्न है।

'कामिनी' के रूप-प्रकार को देखते हुए, मैं इस रचना को एक 'कथागीत' कहना चाहता हूँ। मेरे कुछ मित्रों की दृष्टि में पुराने 'खंडकाव्य' नाम से ही इसका पुकारा जाना अधिक उपयुक्त है। ऐसे छोटे मतभेद को वितंडावाद का रूप देना मैं सदैव अपने स्वभाव के प्रतिकूल समझता रहा हूँ।

जिस काव्यभूमि में यह अति सामान्य वनफूल 'कामिनी' खिला है, उसका नाम है 'मिट्टी और फूल'—अधिकांशतः मेरी उन स्फुट कविताओं का संग्रह, जो कारावास में लिखी गई थीं और जिनमें मेरे पिछले कविता-संग्रह, 'पलाश-वन' के बाद की मेरी लगभग सभी मनोदशाओं के चित्रगीत बन चुके हैं। यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि 'कामिनी' को साधारणतः मेरे गीति-काव्य का ही एक अंश समझा जाय। 'कामिनी' और मेरी 'मनोकामिनी' में सादृश्य भी है कदाचित।

पहले मैं इस कथा को एक दुःखान्त कथा का रूप देना चाहता था, किन्तु दूसरे ही क्षण ऐसा करने को मेरा जी न हुआ—ऐसा करना मुझे लड़कपन ही मालूम होता। एक क्षणिक आवेश में मैंने कामिनी को अन्ततः एक ऐसी परिस्थिति में भी डालना चाहा कि मैं 'कामिनी' के पाठकों के साथ कामिनी पर हँस सकूँ। कोसने की तकलीफ़ से बचने के लिए ही मैं व्यंगबाणों से काम लेना चाहता था। किन्तु मेरी स्वाभाविक रुचि कभी से इस ओर नहीं रही, और आवेश का क्षण भी क्षणिक ही था। इसलिए, कामिनी को मैं कोस नहीं सका, उस पर व्यंगबाणों का प्रहार करना मुझे सह्य नहीं था। संक्षेप में, यह है 'कामिनी' की मानसिक पृष्ठभूमि।

इस कथागीत में मैंने अनेक प्रान्तीय शब्दों का प्रयोग किया है। कई शब्द तो पच्छिमी युक्तप्रान्त की बोली से हैं, किन्तु दो-

एक शब्द—जैसे, 'डाकना' (बोलने के अर्थ में) और 'मौना' (मधुमक्खी) क्रमशः—बँगला और कुमायूँनी भाषा से लिए गए हैं। इसका यह अर्थ कदापि नहीं कि मैं इन उपर्युक्त दोनों भाषाओं में से किसी एक से भी किंचित् मात्र परिचित हूँ। ऐसे शब्द मैंने सुने और शब्द-चयन की अपनी प्रवृत्तिवश उनका संग्रह और प्रयोग करने में हिचक नहीं की।

काशी।
८ सितम्बर १९४२

—नरेन्द्र

'वन की चिड़िया'

को

समर्पण-गीत

बन की चिड़िया ! तेरी—
चमकीली, चटुल रँगीली पाँखें :
उलझीं उस इन्द्रधनुष में
मेरी दिशाभूल-सी आँखें !

दुलराते तेरे अंग-अंग,
मेरे अभिलाषी लोचन;
है देह यहाँ पर संग संग
तेरे, उड़ता चञ्चल मन !

बन की चिड़िया ! मैं तेरे सँग,
पर तू कैसे पहचाने ?
मैं पिंजर का पंछी, रानी,
गाता नित तेरे गाने !

दे चटुल पंख इन गीतों को—
तेरे सँग सँग उड़ पाएँ;
तेरी छाया में उड़ें, और
इनमें रँग-रस भर जाएँ !

तू देख गीत का अर्घ्य लिए
लालायित मेरी आँखें,
किस नभ में सौ सौ फूल
खिलातीं तेरी गुंजित पाँखें ?

देवली डिटेंशन कैम्प
दिसम्बर १९४१।

कामिनी

अतिथि

१

कह चुका जब अतिथि अपनी कथा आद्योपान्त,
लीं झुका आँखें—कमल ज्यों झुके देख दिनान्त !
निगलने उसको लगे तब नेत्र दो उद्भ्रान्त—
खिड़कियों से दीखता था मन अधीर अशान्त !

पीठ पीछे अतिथि के था उदय-पथ पर इन्दु;
झलकता था दूर उज्ज्वल सूक्र का लघु बिन्दु !
बाल दीपक, सकुच पूछा तनिक मुँह को मोड़—
'क्या हुआ उनका जिन्होंकी बात दी थी छोड़ ?'

नयन दोनों के मिले उस क्षण—नयन नादान !
कह गए वह, छिपाते थे जो युगल मन-प्राण !
अतिथि ने जानी कुमारी के हृदय की बात,
कुमारी को दिखा मानस बीच सुधि-जलजात !
अतिथि का मानस ! कुमारी के मुकुल मन-प्राण !
और सुधि-जलजात वह ! रे, कौन वह अनजान ?

वधिक के सन्मुख मृगी के नेत्र दो उद्भ्रान्त—
खिड़कियों से दीखता था मन अधीर, अशान्त !

देख कम्पित दीप-शिख, बोला पथिक मुँह मोड़-
'अब नहीं वह, दी इसी से रात मैंने छोड़ !'

२

इन्दु चढ़ आया—अतिथि का शीश
शोभित लिए मंडल-थाल,
औ कुमारी ने पहन ली
कौमुदी के हाथ मंगल-माल !

कामिनी बोली दबे स्वर—
'चाँदनी में क्या न आती याद ?'
अतिथि कहता—'भली लगती
चाँदनी यह आज बरसों बाद !'

कामिनी ने कहा धीमे मधुर स्वर
में, 'आज कैसी बात ?
क्यों सुहाती आज बरसों बाद,
बोलो अतिथि, यह मधुरात ?'

'कुमारी ! कुटिया तुम्हारी, चंद्रिका
का केन्द्र, मधु का देश !
आज पागल पुलक कहते—
बिता दो इस देश जीवन शेष !
कौन से संस्कार जाने आज
जिनके हेतु यह संयोग ?

देखता हूँ हो रहा मन-शलभ का
कांचन-शिखा से योग!'
खिंच निकट पूछा अतिथि ने
मुकुल-से अधखिल दृगों में देख—
'क्या न आँकोगी कनक-भुजपाश
से तन पर सुनहली रेख?'

नेत्र विस्फारित निरुत्तर, कँपे
नस नस में तड़ित-से प्राण,
कंठ रुँधता, प्रश्न उठता—
पूछती-सी—'कौन वह अनजान?'

कामिनी का रूप जैसे वृन्त पर
उत्फुल्ल लाल गुलाब,
अभी जिसको छू न पाया हो
बनाव-दुराव का बर्ताव!

अतिथि ने समझी कुमारी
कामिनी के हृदयतल की बात—
रख दिया पद युगल पर वह
मानसर का श्याम सुधि-जलजात

याचना में नमित शशि,
ऊपर उठाती मदभरी मधुरात;

अतिथि की अंजलि सलज स्वीकार करती
कामिनी मृदु गात!

३

द्वार पर मधुमंजरित पुलकित तरुण तरु आम,
माधवी लतिका खिली लिपटी सहर्ष ललाम!
पूर्ण यौवन दे गया था आम को ऋतुराज,
छोड़ दी थी माधवी ने भी दिवस की लाज!
पी रहे दोनों परस्पर श्वास-सुरभि-झकोर,
बँध गए भुज-पाश में जैसे समय के छोर!
चूमते थे माधवी को आम के सौ पात,
शिथिल था प्रिय-पाश में ज्यों माधवी का गात!
चाहते दोनों—परस्पर वार दें मन-प्राण,
प्रेम के दो कण हुए मिल सप्त सिन्धु समान!

कुसुम-गुंफित शांति लतिका से सजा मालंच,
कह रहा—'बाहर चलो, समझो न विश्व प्रपंच!
चाँदनी की छाँह में जग सरल जैसे फूल,
विश्व—सुख-सौन्दर्य-सागर का रजत उपकूल!
उड़ रही नभ बीच जोड़ी हंस की गतिमंद,
हम जिसे कहते जलद, वह हंस दो सानंद!
दे रही है कैरवी भी इन्दु को मधु-दान,
कर रही अवनी गगन के सुधारस का पान!

बाँध भुज-बंधन रहे सो पास सुरभि-समीर,
डूब तू भी प्रेम में, ओ बावले मतिधीर!'

कामिनी इस चाँदनी को वार बार निहार
धर अतिथि के वक्ष पर सिर, झुकी यौवन-भार!
अतिथि को उत्तर मिला, मधुदान, मधु-उपहार—
मौन थी वह, दे रहा उत्तर निखिल संसार!
अधर कहने लगे अधरों से हृदय का दाह,
हृदय अतिसुख से रहा ज्यों बार बार कराह!
काँपते-से ओठ, रह-रह लहकती-सी चाह,
कंठ रुँधता, शब्द बुद्बुद्, हृदय सिन्धु अथाह!

रोकती पग कामिनी के, लाज आँचल थाम;
चीर उड़ता—कामना आँधी बनी उद्दाम!
प्रेम मानस में समाता कहाँ?—ऐसा पूर!
जल उठा उर-थाल में शत वार चूर कपूर!
अंग!—नस-नस में उमड़ती तड़ित-निर्झर-धार!
डुबा वसनों को उमड़ता रूप-यौवन-ज्वार!
कह रहा प्रति पुलक, लहलह कह रहा प्रति रोम—
'उठो, पूर्णाहुति परस्पर दो: प्रणय का होम!'

गुँथ गए भुजपाश—दृढ़ ढीले हुए हर बार,
प्रकट करते प्रेम अगणित प्रेम-चुंबन वार!

अंग जैसे पीन रस से सुनहरे अंगूर—
गात में यौवन, हृदय में प्रेम-रस भरपूर!
मुँद गए मद से भरे लोचन—कहाँ संसार!
डूबते दोनों—गहन रे प्रेम-पारावार!

मुँदे लोचन चार, भीतर बाल चौमुख दीप!
एक मोती ढाल, डूबे साथ दो तन-सीप!
एक कण आलोक का, जब मुँदे लोचन चार!
एक क्षण आनंद का, सौ जन्म का उपहार!

विश्व भर में चाँदनी थी, यहाँ काली रात—
कामिनी की खुली अलकों में ढँके दो गात!
मिले चेतन-चेतना, दो शिथिल तन असहाय—
हो किसे आश्चर्य जो अब श्वास भी रुक जाय!

तंतु जीवन शक्ति-वाहन बने विद्युत् तार—
चेतना का केन्द्र केवल एक, शतमुख धार!
एक ऐसे केन्द्र तक पहुँचे युगल मन-प्राण,
इन्द्रियों के द्वार वाले गात दो अनजान!

वह असह आलोक!—कैसे दें दृगों को खोल?
वह अनिर्वचनीय!—कैसे मुख सकेंगे बोल?
मधुमिलन का फूल!—ऐसी मधुर मादक गंध...
चेतनाहत नासिका के रंध्र, लोचन अंध!

मिलन का संगीत!—ऐसी मंद्ररव झंकार,
चेतना जिसकी अचेतन कर्णयुग के पार!
त्वचा जैसे मृत्तिका, वह चेतना ज्यों फूल—
पुलक-अंकुर पर रहा जो फूल सुख से झूल!

प्रेमियों का मधुमिलन-क्षण श्याम कमल समान,
लिपटता मकरंद में असहाय इंद्रिय-ज्ञान!

४

आज तू मत गा, कोयलिया री, विरह के गीत!
मधुमिलन - बेला! अरी सुन प्रेमियों के
मग्न मन के मौन मंदिर में मिलन-संगीत!
पूर्ण पुष्पित माधवो को भेंटता अब, देख कोयल,
पुलक-पल्लव पहन तरुण रसाल!—
गा रही तू क्यों विरह के गीत, मधु से मधुर कोयल,
बैठ ऐसे आम्र तरु की डाल!

नदी में हँसती तरंगें औ तरंगों पर
सुहाने इन्दु का श्रीबिम्ब हँसता देख!
झौर झागों के पहन नर्तित तरंगें,
स्फार-गुंफित वह रजत-कर-कर्धनी की रेख!
इन लहरियों की तरह ख़ुश ख़ुश विचर तू
आम्रपत्रों में मिलन के गीत गा, पिक श्याम!

काम-शर से चोट खाई, बावली पिक,
ठहर पल भर, यों न रो तू आज आठों याम !
पल्लवित मधुमंजरित तरु-आम्र-वासिनि !
रंग-रंजित, सुरभि-सिंचित नीड़ तेरो डाल,
नीड़ तेरी डाल ऐसी, जहाँ मरकत-महल
में लटके हुए पुखराज और प्रबाल !

सुन, पिकी ! यह स्वर्ग-सुख का नीड़, जिसको
सँवारा ऋतुराज ने—वह नीड़ तेरा देश ;
अरी मधुप्यारी कोयलिया ! बता तेरे हृदय में
है आज ऐसा कौन-सा दुख-क्लेश ?

देख री काली कोयलिया ! सब कहीं तो आज
मधु के पान का, मधुदान का सामान ;
हँस रही है रसभरी यह शर्वरी भी
नीलमणि के पात्र में कर चंद्रिका का पान !

चाँदनी मधुयामिनी की अलक छूता, अंक भरता
आज अगणित करों से पूर्णेन्दु !
विरह को मधुमिलन का वरदान देता, चूम लेता
आज अगणित करों से पूर्णेन्दु !

आज की मनमोहिनी यह यामिनी तो बनी निश्चय
प्रेमियों के मधुमिलन के काज—

विरह की मारी कोयलिया, केश-सी काली कोयलिया,
मत विरह के गान गा तू आज !

५

सारसों की जोड़ियाँ भी दूर उड़ती जा रहीं—
डाकतीं* वे, प्रतिध्वनियाँ व्योम बीच समा रहीं !
आज उजली चाँदनी में दीखता हलका गगन,
इसलिए यह टिटिहरी भी घूमने में ही मगन !
टिटिहरी की ट्रिल टिरिल ट्रिल शून्य नभ में खो रही,
झींगुरों की गूँज झीनी और तंद्रालस मही !

आज चकवा चुप,—हृदय में स्वप्न सुंदर सुनहरे !
बदलदी दुनिया, नयन वे कौनके जादू-भरे ?
घन बिना नाचे शिखी हिमश्वेत—क्या अभिप्रेत है ?
श्याम घन वाले शिखी ! क्यों वेश तेरा श्वेत है ?
याम भूले राह चलना, अब न होगा भोर क्या ?
हो किसे आश्चर्य—चुगता अग्नि मुग्ध चकोर था ?
उड़ रहे बगुले गगन में, फूल-से खिल-खेलते !—
दूधधोई चाँदनी से परिन्दों का मेल रे !
पोदना भी आज सीधा सो रहा सुखनींद है !
सुधा बाहर चाँदनी में, दृगों में सुख-नींद है !

* बोलतीं

'सो गए क्या ?'—सकुच पूछा कामिनी ने
पास सोए प्राणधन पर मुग्ध चितवन डाल,
वज्रदृढ़ औ कुसुमकोमल वक्ष वाले अतिथि के
हिय डाल गोरी बाहुओं की माल !
'कहो प्यारे ! सदा मेरे ही रहोगे ? बताओ
या है तुम्हारा कहीं कोई और ?
बताओ, तुम छोड़ मेरी हृदय-कुटिया
तो बसाओगे न कोई दूसरी अब ठौर ?
बाँध रेशम-डोरियों में मैं तुम्हें सब दिन
रखूँगी पास, निशि-दिन पास, अपने पास !
अब तुम्हारे ही लिए मन-प्राण होंगे
औ तुम्हारे ही लिए क्षण-याम, वासर-मास !
फूल की तुम डाल, मैं बुलबुल बनूँगी
और गाऊँगी सुनहले गीत, सुख के गीत !
आ गए हो, अब कहीं जाने न दूँगी,
पास सुधि भी किसी की आने न दूँगी, मीत !
मैं तुम्हें हँस-हँस रिझाऊँ, रूठ जाऊँ,
और फिर भी न मानो—रोकर मनाऊँ, नाथ !
तुम मुझे लो अंक भर भर—ढुलक जाऊँ,
पास खींचो—भाग जाऊँ, फिर न आऊँ हाथ !
और जो खोजो कुसुम में तुम मुझे
तो मैं बनूँ तितली चटुल तत्काल,

पास आओ—दूर उड़ जाऊँ, बनूँ छोटी चिरय्या,
तारई फिर—हार जाओ डाल अगणित जाल !

अतिथि ने उत्तर दिया कस बाहुओं में
कामिनी को, देख बंकिम कोर ;
मधुर अधरों पर अधर धर चुप किया चट
कामिनी को खींच अपनी ओर—
'प्रेमियों को बाँधने में बाहु-बंधन-सा न कोई
और दृढ़ बन्धन, सुनो नादान !
प्रेम की सौ प्रतिज्ञाएँ—प्रेम-चुंबन-सा
न कोई और सच्चा वचन, ऐसा जान !
मैं यहाँ हूँ इसलिए, हे प्रियतमे, संशय वृथा,
मत हो अधीर अशान्त !
चाँद है, यह चाँदनी है ; याम हैं, मधुयामिनी है ;
कामिनी ! मत कर हृदय उद्भ्रान्त !'

बात बूझोगी ?—'शिशिर से शीर्ण, पतझर-जीर्ण
जग में आ गया ऋतुराज कैसे आज ?'
'सरल है—थक नींद आती, नींद में सुख-स्वप्न आते,
स्वप्न में प्रिय—आगए तुम, अतिथि, जैसे आज !
बताओ तो—'डूबते कन कन जगत के
इस रजत छबि-ज्वार में क्यों और कैसे आज ?'

'ओह जी, यह तो सरल है और भी—
मैं डूबती जाती तुम्हारे प्रेम में ज्यों और जैसे आज !'

६

इस घड़ी मानस युगल में तृप्ति का आनंद,
मुँद गए हैं कंज-दृग, कर मिलन-मधुकर बंद !
शून्य नभ में हँस रहा बस एक पूरन चन्द्र,
दो जनों के दृगों में हैं बंद दो दो चन्द्र !

नींद ! मीठी नींद ! तेरा देश, ऐसा देश,
जहाँ सब कुछ नहीं देते बसन-भूषण-वेश !
जहाँ राजा भिखारी, है रंक जन का राज,
जहाँ ठुकराती सदा तू छत्र औ' सिरताज !
चूमती वह माथ, जिस पर सजी श्रमजल-माल ;
वह हथेली थामती, जो कठिन श्रम से लाल !
मृत्तिका के गर्भ से जो रहे स्वर्ण निकाल,
ताप से जिनके रही पक अन्नवाली बाल,
मूठ हल की औ हथौड़े को जिन्होंके हाथ,
तू बिताती रात, मीठी नींद, उनके साथ !
बैठ सिरहाने श्रमिक का चूमती तू माथ,
व्यर्थ ही तो खोजते तुझको नृपति, नरनाथ !
नींद ! मैं भी क्लेश-दुख अपने सका हूँ भूल
स्वप्न के नौ रत्न वाले पालने में झूल !

दूसरों के देह-श्रम से पा रहे जो भोज,
आज ऐसे धनिक जन की सुंदरी को खोज ;
किन्तु, मीठी नींद ! तू उसको बनाती मीत
जो न जीता दूसरों पर, छोड़ जग की रीत !
साफ़ जिसका मन, थके जिसके पिराते अंग,
तू बिताती रात, मीठी नींद, उसके संग !

कीच-काँदों से भरे पर श्रमिक जन के वास,
जहाँ मच्छर-मक्खियों से रात-दिन का त्रास !
हैं घिनौने से घिनौने जहाँ अगणित रोग,
छिन गया है आज जिनसे नींद का सुख-भोग !

हाय मनुज-समाज, तेरे सड़े दोनों छोर—
हैं उनींदे श्रमिक भी औ धनिक भी उस ओर !
नींद ! मीठी नींद ! तेरा देश कैसा देश ?—
यहाँ तो सब ओर दुख का दाह, शोक-कलेश !

नींद योगी को नहीं, पर किसे उससे होड़ ?
नींद रोगी को नहीं, दो बात उसकी छोड़ !
क्यों न मीठी नींद सोए, किन्तु सब संसार ?
नींद ! मीठी नींद ! तुझ पर सभी का अधिकार !
नींद से भूला श्रमिक छोटे-बड़े का भेद,
पा सका निधि नींद की निर्धन, बहा कर स्वेद !

भेद जग का भुलाने को आज केवल मृत्यु,
नींद जब रूठी, सहारा और संबल मृत्यु !

काम-काजी जीव-जग को छोड़, जिनके पास
आज आई नींद वे दो सो रहे सोल्लास !
अलखनन्दा के किनारे कुटी ज्यों प्रतिहार,
सो रहे प्रेमी युगल ले स्नेह का संसार !

मनाते ये दो जने मधुमिलन का त्योहार,
चंद्रिका ने सजाए हैं रजत बन्दनवार !
चूमते हैं स्वप्न जिसके पलक, अलक बयार—
कामिनी वह (खिसक आया बाँह का गलहार),
बाँह जिसकी, वह अतिथि है, सुखी है सानंद ;
और कोने में धरा वह दीप, होता मंद !

चंद्रमा आया—गगन में घूम—पश्चिम ओर,
पड़ रही फीकी ज़रा कुछ चन्द्रमा की कोर !
कुलबुलाने लगे पंछी अलस आँखें खोल ;
चुलबुली-सी हो रही मधुवात, धीमी डोल !
चाँदनी फीकी, गगन नीला, सुबह का साज,
शुभ्र घन गुलदावदी-से बन रहे पुखराज !
कामिनी भी रही मदमाते दृगों को खोल,
जाग शरमाई, उठा उर में गुलाबी दोल !

फूल और पत्र

१

हेम-मंदिर-सदृश उदयाचल रहा दिख दूर,
नीलमणि के खंभ, दिखता कहीं हिम-कर्पूर!
किरणपंखी-सा खुला नभ में कनक-आलोक,
नील गिरि नीचे हँसी ऊपर सुवर्ण विलोक!
किरण किसकी, परस से जिसके मिटा-तम-दोष?
किस किरण के लिए रंजित घन बने पापोश!

स्वर्ण-रथ के लिए लालायित कनकप्रभ बाट,
हेम-मंदिर से चला रवि उठा अरुण ललाट!
जनक जग का, आदितेजस्, प्रथम जागृति-ज्ञान,
सूर्य तेजस्वी!—वही चर-अचर का भगवान!

सहम कर, बच कर खड़े-से दूर दो गिरिराज,
ले उड़े जलता कनक-रथ लपट-वेशी बाज!
निमिष में नभ में चढ़ा रथ हेम-पर्वत फाँद,
मार्ग कब का छोड़ भागे मंद तारक-चाँद!

हँसे जिसके कर-परस से साँवले गिरि-शृंग,
दिखाए जिसने ज़रा-सी ओस में सत रंग,

मुसकुराए फूल जिससे, सजा पल्लवडाल,
बिना जिसके नहीं होगा कभी कहीं सकाल,
परिक्रमण करते सतत ग्रहपिंड जिसके अंश,
धरा खिलती ज्योति से जिसकी बनी अवतंस;

लोक जिस आलोक से निकले जहाँ सब लीन,
इन्दु का अंकुर बढ़ा जिससे, हुआ फिर क्षीण;
खग उसी आलोकगृह का कर रहे गुणगान,
वंदनानत कामिनी भी झुके ज्यों पक धान!

प्रकृति-पोषित कामिनी को सूर्य सबका केन्द्र,
जन्म लेते विश्व उससे, देव वह देवेन्द्र!
सभी ग्रह-उपग्रह, नखत-नभपिंड जितने और
जन्म देता, पोसता सबको वही सिरमौर!

तत्व जितने, दीखता यह विश्व जिनका खेल—
नित्य नव संसार रचता रहा जिनका मेल;
दिन दिखाता जो, छिपाती है जिसे नित रात—
उसे रचते तत्व कर आघात औ प्रतिघात;

वही सत्ता-तत्व जितने—सभी का आधार,
एक तेजस्-तत्व जो इस सूर्य का उद्गार!
सृष्टि के हों देव अगणित, सूर्य पर देवेन्द्र,
कामिनी यह जानती थी सूर्य सब का केन्द्र!

आदि में क्या था नहीं था, कुछ नहीं मालूम !
कहाँ थी धरती रही हो जो धुरी पर घूम ?
एक दिन सहसा फटी घनशून्यता की कोख
और पैदा हुआ उससे पिंड-घन आलोक !
सूर्य उसका नाम है, वह प्रथम तेजस-बिन्दु—
पवन श्वासा, अंश पृथ्वी, स्वेदकण हैं सिन्धु !

अरुण अंगारक, हरितद्युति बुध, हमारी भूमि,
पुष्करागी बृहस्पति, शनि—सब रहे हैं घूम !
देखती थी कामिनी नित सूर्य सब का केन्द्र-
सृष्टि के हों देव अगणित, सूर्य पर देवेन्द्र !
सब उसी आलोकगृह का कर रहे गुणगान,
झुकी कंचन कामिनी ज्यों झुके पक कर धान !

वंदनानत कामिनी : 'चर-अचर के भगवान !
जनक जग के, आदि तेजस्, प्रथम जागृति-ज्ञान !
हिल तुम्हारे श्वास से शत पत्र कर गुण-गान
प्रकट करते भाव मेरे, मुझे अक्षम जान !
तुहिन-कन से लदी जो यह फूलवाली डाल
अंजली देती हमारे लिए आज सकाल !'

'हमारे' कह तोगई, चट टोकती पर लाज-
हँसी करती—"क्यों, किसे कहतीं 'हमारे' आज?"

अरुण किरणों से खिला मुख हुआ अतिशय लाल,
झुक गई वह और भी, ज्यों भरी पाटल-डाल !
मंद मलयज से गई ज्यों लता धीमी डोल
कँपी वह, फिर कहा वंशी-से स्वरों में बोल—

'देव ! तुम सब देखते हो, मैं निपट नादान—
फूल बनते फल न क्या पर कर किरण-रस पान ?
देव ! मैं भी कली-सी अब दे चुकी मधुदान—
सफल हूँ, फलवती हूँ मैं, दो मुझे वरदान !
भूल है तो क्षमा दो, अज्ञान मुझको जान,
जनक जग के, आदि तेजस, प्रथम जागृति-ज्ञान !

धरित्री पुत्री तुम्हारी, हे अमित आलोक !
जन्मदा मेरी वही है स्वर्णगर्भा कोख,
इसलिए अधिकारिणी हूँ, दो मुझे आशीष,
मैं सदा उनकी रहूँ, मेरे रहें वे ईश !
आत्मजा जमना तुम्हारी को मिली ज्यों गंग
मैं हुई उनकी, रहूँ भी सदा उनके संग !

नहीं उपजी, देव, तुमसे—कौन सी वह चीज़ ?
रसातल की सीप में मोती तुम्हारा बीज !
तुम्हारी मिट्टी, तुम्हीं से जन्मती वह फूल,
है तुम्हारा मनु, तुम्हीं चित् और धृति के मूल !

धान के भीतर तुम्हारे किरण-कण साकार,
धेनु के थन में तुम्हारी किरण-सी सित धार!
हंस-से घन को हँसाती तुम्हारी मुसकान,
खिलाती ज्यों कमल-वन को किरण-स्मिति अम्लान!
देव! वह मेरे हृदय का हरे तमस-विकार,
नम्र हो मैं झुकूँ ज्यों तरु आम फल के भार!

मंजरी मुरझी लगा जब डाल पर फल आम,
क्या न सार्थक हुई मैं भी दे उन्हें मधुदान?
सफल हूँ, फलवती हूँ मैं, दो मुझे वरदान,
सूर्य तेजस्वी! अहे चर-अचर के भगवान!'

कोष में थी ओस जिसके चुना ऐसा फूल,
सूर्य को अर्पित किया फिर नियम के अनुकूल!
दिवाकर ने कर बढ़ा कर लिया पाटल-फूल,
जगमगाई ओस, हँस दी धरा सोनाधूल!
हँसी मरकत दूब, हँसता अखिल नीलाकाश,
कामिनी भी चली कुसुमित कामिनी के पास!
मुसकराई, देख हँसती ओस के सतरंग,
सामने गिरि नील हँसती, दूर हिम-गिरि-श्रृंग!

२

'मधुप! मत छेड़ो मुझे, मैं फूल चुनती हूँ,
ओस के सतरंग ले मैं स्वप्न बुनती हूँ!'

'आज देखा फूल चुनते फूल को मैंने,
मैं इसीसे पास आया फूल को लेने!'

फूल बोले—'मधुप को तुमने न पहचाना!
सुनो, बातों में मधुप की कभी मत आना!'
कली कहतीं—'कामिनी! मत बहुत शरमाओ,
ज़रा तो हमजोलियों में बैठ बतलाओ!
बताओ, किसके लिए तुम फूल चुनती हो?
बताओ, वह कौन जिसके स्वप्न बुनती हो?'

फूल कहते—'उँह, हमें मालूम है वह भी
जाल में किसके फँसी है कामिनी भोली?'
'तुम रहा करतीं हमारे संग थीं, बोलो—
बन गईं कब लक्ष्य निठुर अनंग की, बोलो?
कुमो! खिलती थीं हमारे साथ तुम निशि-दिन
बिक गईं बिन मोल किसके हाथ तुम पल छिन?'

डाल बोली—'तब तुम्हें मधुदान देती हूँ,
जब तुम्हें मैं पास से पहचान लेती हूँ!
जानती हूँ फूल को सौ भँवर घेरे हैं,
किन्तु ग़ैरों के लिए ये शूल मेरे हैं!
बावली! बतला किसे सर्वस्व दे डाला?
कामिनी! क्यों क्रोड़ में कृमि प्रेम का पाला?'

कामिनी बोली नहीं कुछ—बड़ी भोली थी,
लाज ने मल दी हथेली—विहँस—रोली की!
खिलखिला कर फूल उसकी गोद में आए,
और पत्रों ने ख़ुशी के गीत भी गाए!
वायु डोली, हिली फूलों से भरी डाली,
फूल बरसाता रहा मधुमास का माली!
मधुप गाते—'फूल-सी वह फूल चुनती है,
स्वप्न की साकार माया स्वप्न बुनती है!'

× × ×

किन्तु जाने क्यों कँपे सब कामिनी के अंग?
दृष्टि ऊपर उठी दीखा प्रखर रवि निस्संग!
और देखा—वह स्वयं एकाकिनी निरुपाय,
खड़ी थी सुनसान बन के बीच में असहाय!
हास औ परिहास सब लगता उसे बेमेल—
किन्तु वह कैसे समझती विधाता के खेल!

हर्ष औ अवसाद!—बीचों-बीच रेख अदृष्ट!
एक नग—दो पहलुओं के नाम इष्ट-अनिष्ट!

३

'कामिनी! मैं जा रहा हूँ दूर—कोसों दूर,
बहाए ले जारहा मुझको नियति-गति-पूर!

ना, समझना मत कि मेरी प्रीति थी कर्पूर,
कामिनी ! मैं छोड़ जाता हूँ यहाँ उर चूर !
धूप में लघु धूलिकण की दृष्टि उत्सुक देख,
देख कर या चपल जल पर किरण-कण की रेख;
दुपहरी में देख चलदल के चमकते पात,
देख कर या सुबह का जग आँसुओं से स्नात ;
क्या न चट पहचान लोगी तुम मुझे तत्काल ?
देख लोगी क्या न मुझको खिन्न चितवन डाल ?
तुम कहोगी—जा रहे हो क्या न अपने आप ?
किन्तु बाँधे है मुझे निष्ठुर नियति का शाप !

शाप है, मैं नित्य खोजूँ और भूलूँ गेह !
शाप है, मैं जलूँ—जितना और पाऊँ स्नेह !
शाप है, पूरी न हो पाए हृदय की चाह,
शाप है, भटकाय औ बहकाय मेरी राह !
साँझ होते कमल करते बंद जब उर-द्वार,
और गोधन साथ लाए जब कनक-संसार,
सूर्य जब गिरता क्षितिज पर ज्यों सिंदूरी आम,
दीखता है दीप-सा जब सूक्र अति अभिराम—
दीप-सा जो दूर कुटिया में जला हो दूर,
दीप-सा जिसमें अतिथि को स्नेह हो भरपूर,
तब कहीं उस ओर खिंच जाते अचानक नयन
और कहता, क्यों न मैं दो घड़ी कर लूँ शयन ?

छिप कमल के क्रोड़ में करता मधुप विश्राम,
और मैं भी चाहता कुछ क्षण करूँ आराम !

रस न दे जो मृत्तिका, कैसे जिएँगे फूल ?
नाव कैसे रहे सरिता के न हों जो कूल ?
हृदय मेरा भी कुसुम-सा – इसी से रस-प्यास !
नाव - सा मेरा हृदय, जो चाहता आवास !
कल तुम्हारे पास आया था लिए रस-प्यास,
चाहता था मिले आश्रय, मिले चिर-आवास !
शाप है पर—नित्य खोजूँ और भूलूँ गेह,
शाप है—मैं जलूँ, जितना और पाऊँ स्नेह !
कामिनी ! मैं जा रहा हूँ दूर—कोसों दूर,
बहाए ले जा रहा मुझको नियतिगति-पूर !

देखता हूँ सुबह को जब खिला लाल गुलाब,
अर्ध रवि के दीखते महराब पर महराब !
सच, बुलाता मुझे तब कोई क्षितिज के पार
और होती कर्ण युग में स्वर्ण की झंकार—
'चलो खोजो देश वह, यह सूर्य जिसका द्वार ;
दृश्य छाया मात्र सब, बस एक वह आधार !'
मौन मन के मर्म के भीतर—गुहा में—बोल
गूँजते, सब गात जाते निमिष में कँप-डोल !

पाँव बढ़ जाते अयाचित मार्ग में अज्ञात,
खींचता मुझको कहीं, कोई अजान, हठात्!
इसी गति से सदा से चलता गया नित भोर—
राह ली ऐसी, नहीं जिसका कहीं कुछ छोर!
रैन में आवास, पर युग नयन में चिर-प्यास;
विवश हूँ, प्रति दिवस कहता—'निशावास प्रवास'!
तुम कहोगी—जा रहे हो क्या न अपने आप?
किन्तु बाँधे है मुझे निष्ठुर नियति का शाप!

क्या न आएगी मुझे सब दिन तुम्हारी याद,
करूँगा जब जब किसी सुनसान को आबाद?
याद आएगी मुझे यह यामिनी मधुस्नात,
और हाँ—हर बात पर मनहर तुम्हारी बात!
याद आएँगे मुझे नित कामिनी के केश,
स्निग्ध घन में ढँक जिन्होंने किए शीतल क्लेश!

याद आएगी मुझे मृदु कनक-तन की छाँह
और सिरहाने तुम्हारी गोल गोरी बाँह!
याद आएँगे मुझे प्रिय कामिनी के अंग,
मूर्छना में बँधे मेरे अंग, जिनके संग!
याद आएगा मुझे वह स्नेह-सुख का लोक,
याद आएगा हृदय में जगा जो आलोक!

बिछुड़ मिल जाते नहीं क्या नित्य कोकी-कोक ?-
किन्तु मेरे भाग्य में सब दिन विरह का शोक !
तुम कहोगो—जा रहे हो क्या न अपने आप ?
किन्तु बाँधे है मुझे निष्ठुर नियति का शाप !
शाप है—मैं सदा खोजूँ और भूलूँ गेह !
शाप है—मैं जलूँ, जितना और पाऊँ स्नेह !

आह, परवश शापवश मैं भटकता नित भोर—
राह ली ऐसी, नहीं जिसका कहीं कुछ छोर !
देखता हूँ सहस रविकर तुरत आँखें मीच—
मुझे ले चलते न जाने कहाँ बरबस खींच !
सुबह जब नभ बीच पीलो लाल उड़ आते,
और जब बुलबुल लवा पिक प्रभाती गाते,
देखता हूँ सहस रवि-कर आँख मेरी मीच—
तुरत ले चलते न जाने कहाँ बरबस खींच !

सोख लेते ओस ज्यों आरक्त कर रवि के,
भस्म करते शांति मेरी प्रखर शर रवि के !
चाँद-सा मैं शून्य में तब प्रेत बन अपना
घूमता जलहीन घन-सा, छिन्न-सा सपना !
खींच ले चलता न जाने कौन मुझको दूर,
दूर—सब से दूर ले चलता मुझे वह क्रूर !

तुम कहोगी—जा रहे हो क्या न अपने आप ?
किन्तु बाँधे है मुझे निष्ठुर नियति का शाप !
शाप है—मैं सदा खोजूँ और भूलूँ गेह !
शाप है—मैं जलूँ जितना और पाऊँ स्नेह !
आह, परवश शापवश मैं भटकता नित भोर—
राह लो ऐसी, नहीं जिसका कहीं कुछ छोर !

ज्योति से है मोह मुझको, ज्योति का मैं दास,
चाहता था इसीसे मैं दृगों में आवास !
शाप है पर—रत्न छोड़ूँ और लूँ खद्योत
और उनके साथ खोजूँ ज्योति का चिर-स्रोत !
चाहता था शांति, पाया भ्रान्ति का वरदान,
अन्यथा क्यों भटकते तज तुम्हें तन-मन-प्राण ?
कामिनी ! मैं जा रहा हूँ दूर—कोसों दूर,
बहाए ले जा रहा मुझको नियति-गति-पूर !
तुम कहोगी—जा रहे हो क्या न अपने आप ?
किन्तु बाँधे है मुझे निष्ठुर नियति का शाप !

मुझे कोई बुलाता है बार बार पुकार—
'आज सब को भूल, आओ यवनिका के पार !'
कर्ण युग में गूँजती नित एक यह झंकार—
तृण-सदृश हम सब, नियति गतिशील ज्यों मझधार !

बह रही अहरह अनवरत, पर्वतों के पार—
नियति की मझधार—फिर घनघोर पारावार !
कह रहा घन्नाद-पारावार दूर पुकार,
गूँजती मेरे हृदय में मंद्ररव झंकार !

चाहते गति रोकना जब बाँह भर भर कूल,
इन्दु हँसता—बीचियों पर ज्योति-सस्मित फूल !
मंद मरमर गीत गाती नियति गति-मझधार—
मुझे कोई बुलाता ज्यों बार बार पुकार !
कामिनो ! मैं जा रहा हूँ दूर—कोसों दूर,
बहाए ले जा रहा मुझको नियति-गति-पूर !
विवश हूँ, बढ़ चले मेरे पाँव अपने आप,
कामिनी ! मैं करूँ क्या, मुझको नियति का शाप !
घूमते ग्रह और उपग्रह भी न अपने आप,
मुझे भी ले जा रहा निष्ठुर नियति का शाप !
कभी निश्चल न बैठेगा गगनगामी चाँद,
सदा मैं भी चलूँगा गिरि और गह्वर फाँद !

दो घड़ी का मिलन, अब आजन्म विरस बिछोह—
जन्म से अभिशप्त जो, कैसे करे पर द्रोह ?
चाहता था भविष्यत् आगत तुम्हें दूँ सौंप,
किन्तु पहले भी बिंधा था नियति-शर से क्रौंच !

जन्म से ही नियति मेरे प्रति रही है क्रूर,
खींच ले चलती न जाने कहाँ मुझको दूर ?
कुचल मेरा हृदय बढ़ते पाँव अपने आप,
क्या करूँ, मैं विवश हूँ—निष्ठुर नियति का शाप !

तुम कहोगी—'क्यों न पहले बताया था, क्रूर ?
आज जाते हो बिछुड़ कर दूर—कर उर चूर !'
भाग्य में पर जो बदा था नहीं उससे मुक्ति,
नियति के आगे नहीं चलती किसी की युक्ति !
कामिनी ! यह जान लो हम तुम प्रयोजन मात्र,
प्यास मन की बुझाने को परस्पर मधुपात्र !

सहज आशा तो नहीं, पर हुआ यदि संयोग,
कामिनी ! हम फिर मिलेंगे भोगने सुख-भोग !
सुनो, मैं अभिशप्त हूँ—संभाव्य है पर मुक्ति—
नियति ने ऐसी बनाई एक ही बस युक्ति !
ना, नरक से त्राण देगा नहीं यह मधुदान,
चाहिए उस मुक्ति के हित स्वस्थमुख संतान !
पूतहीन अऊत—उसका नहीं संभव त्राण,
चाहिए उस मुक्ति के हित स्वस्थमुख संतान !
यदि रहा निष्फल हमारा परस्पर मधुदान,
भ्रमूँगा सुनसान में अभिशप्त प्रेत-समान !

फिर कभी क्या मिल सकेगी मधुर कंचन-छाँह,
अब न सिरहाने रहेगी मृदुल गोरी बाँह!
पार कर पर्वत, नदी, मरुभूमि औ कान्तार
सदा डोलूँगा भटकता मैं क्षितिज के पार!
सुनो, मैं अभिशप्त हूँ—संभाव्य है पर मुक्ति,
नियति ने ऐसी बनाई एक ही बस युक्ति!

सीप कैसी, जो न सकती एक मोती ढाल?
कोख कैसी, जो न जन सकती अनोखा लाल?
कामिनी! संभव तुम्हारे हाथ मेरी मुक्ति,
नियति ने ऐसी बनाई एक ही बस युक्ति!

नियत क्षण का पराभव, जिससे नई उत्पत्ति,
तत्व दो मिल डूबते—होती प्रकट नव शक्ति!
इसीसे तो प्रेयसी से उच्च मा का स्थान,
व्यर्थ ही गाए न सबने मातृ के गुण-गान!

ब्रह्मपद से मातृपद को उच्चतर सम्मान,
स्वर्ग उसके श्रीपदों में औ गिरा में ज्ञान!
सफल हो, फलवती हो तुम—कामना है, प्राण!
और मुझको भी मिले अभिशाप-अघ से त्राण!'

मौन बैठी कामिनी जब पढ़ रही थी पत्र,
भटकता था अतिथि कोसों दूर तब अन्यत्र!

धूलि उसके साथ थी, था कामिनी का ध्यान
और आँखों में लिखा था यह दुखद आख्यान !

४

दुखी हूँ मैं, आज उलटे पाँव फिर जाओ, दिवा !
चाहिए मुझको न कोई ज्योति अब उनके सिवा !
तुम्हीं ने मुरझा दिया कल जो कुमुद-मानस खिला,
ना सकीं तुम देख जो सौभाग्य-सा साथी मिला !
दुखी हूँ मैं, आज उलटे पाँव फिर जाओ, दिवा !
चाहिए मुझको न कोई ज्योति अब उनके सिवा !

हे दिवाकर देव ! तुम क्यों आज बैरी हो गए ?
क्यों तुम्हारी ज्योति में वह रत्न मेरे खो गए ?
कर बढ़ा कर क्यों उन्हें तुम ले गए यों खींच कर ?
कर रहे अंधेर क्यों तुम आज आँखें मींच कर ?
हे दिवाकर देव ! तुम क्यों आज बैरी हो गए ?
क्यों तुम्हारी ज्योति में वह रत्न मेरे खो गए ?

लौट आओ, और उनको फिर लिवा लाओ, निशा !
घनी मावस बनो, जिसमें डूब जाएँ सब दिशा !
और वह भी आज रस्ता भूल कर फिर आयँ फिर,
खुले मेरे केश उनको छिपा लें, छाजायँ घिर !

लौट आओ, और उनको फिर लिवा लाओ, निशा !
घनी मावस बनो, जिसमें डूब जाएँ सब दिशा !

तुम जहाँ भी हो, तुम्हारी चरण-रज लूँगी,
तुम न आए, प्राणधन, तो प्राण तज दूँगी !

निशि-वासर

१

वह अंगारों के गुम्बद-सा
उठ रहा चाँद भूतल पर से,
संध्या की अंतिम कांति-किरन
उड़ गई चपल पीपल पर से!

अब अंतिम बार पंख अलसे
फड़फड़ा रही है सांध्यवात,
ज्यों ओश-पत्र पर सोने को
तंद्रालस-आती देख रात!

दिन दिन भर घूम घूम थक कर
लंबी हो लेट गई छाया,
औ खड़े सो रहे पेड़ बड़े—
वन-प्रान्तर सारा अलसाया!

तरुओं को झिलमिल जाली के
उस पार दीखता अंगारक,
जलता हो जैसे दूर किसी
कुटिया में स्नेह-स्निग्ध दीपक!

जलता है इस कुटिया में भी
श्रीहीन दीप—अति म्लान जोत,
पर किस दूरागत की आशा से
उसे मिलेगा स्नेह-स्रोत?

धुँधले दीपक-प्रकाश-सा ही
इस परित्यक्ता का मन मलीन,
राकापति की-सी एक कला
उसकी भी ज्यों होगई क्षीण!

वह कब तक बैठी देखेगी
उस निर्मोही की रोज़ राह—
कुटिया के भीतर जला दीप,
अपने भीतर का छिपा दाह?

२

एक दिन की बात, पर
कितनी न फीकी चाँदनी!
न हो पूनो, पर न
चौदस की सरीखी चाँदनी!

चौदसी की चाँदनी थी—
कुमारी की चाँदनी,
उम्र चढ़ती और चढ़ता
रूप—क्वारी चाँदनी!

षोड़शी का पूर्ण यौवन—
पूर्णिमा की चाँदनी,
प्रतिपदा की चाँदनी—
ढलती उमर की चाँदनी !

एक दिन की बात, पर
कितनी न फीकी चाँदनी
न हो पूनो, पर न
चौदस की सरीखो चाँदनी !

आह, कल की चाँदनी—
थी चाँदनी-सी चाँदनी !
थे न नभ में मेघ, थी
बस दामिनी ही दामिनी !

चाँदनी-सी मुखमलीना
कांतिहीना कामिनो !
फूल-सी थी जो, शिला
बन गई है मधुयामिनी !

घिरे शशि पर श्याम घन,
मैलो हुई है चाँदनी—
कामिनी का रुआसा मन घन,
व्यथा-सी दामिनी !

खिन्न मन, विच्छिन्न चण,
असहाय बैठी कामिनी
दो घड़ी को हो रही वह
चार दिन की चाँदनी !

३

तुम गए तो गए, मेरी
नींद भी क्यों ले गए ?

कुशल लेने नींद भेजी,
अश्रुगीली सुधि सहेजी,
हाय जाने क्या कहेगी !

बावली बन बन फिरूँ मैं,
व्यथा कैसी दे गए !

फिर न उचटी नींद आई,
रात आँखों में बिताई;
कहो, यह कैसी सगाई !

मैं न पहचानी तुम्हें—
मेरे लिए तुम थे नए !

प्राण-मन मेरे तुम्हारे,
किन्तु गिन गिन कर सितारे
जिऊँगी किसके सहारे ?

कहो, सब दिन के लिए क्या
दिन मिलन-मधु के गए!

४

तन की रग रग दुख कूट रहा,
मैं छूट गई, मन टूट रहा,
मैया! मेरी छाती फटती!

रुँध रहा कंठ, गीली आँखें,
आँखों से विलग पलक-पाँखें,
पाँवों में से धरती हटती!

घायल हिरनी-सी घबराती,
बिछुड़े सारस-सी डकराती,
मैं रातों नाम रही रटती!

मैं यहाँ रही, वह गए दूर,
कैसे ऐसे हो गए क्रूर?
दुख-रैन नहीं काटे कटती!

आँखें जो देख न पाएँगी,
तो खुली खुली रह जाएँगी!
आँखों से सूरत ना हटती!

५

हलकी झलमल ज्योति जगाता
सात सखी का झूमका !*
पच्छिम ओर गगन में आया हिन्नीपैना†,
नीलम नग लुब्धक डबडब—छल छल दो नैना,
मेरी आँखों में मोती—
दृगजल कपोल युग चूमता !
ध्रुव के चारों ओर सप्त ऋषि, ग्रह सूरज के
घूम रहे, मैं भी घूमूँ चहुँदिशि पद-रज के,
ज्यों परिक्रमा में पृथिवी की
नित्य कलाधर घूमता !

६

मन रे, मंदिर के द्वार खोल
आते होंगे तेरे साँईं !

वह डाल हिली, मैं काँप गई—
मैंने जानी पिय की पैछर‡ !
वह चार घड़ी के साथी थे
मैं समझी थी जीवन सहचर !

* कृत्तिका नक्षत्र। † मृगशिर व्याध नक्षत्र में शर का देहाती नाम। ‡ पद-चाप।

मेरे निर्मोही दूर गए,
है दूर पिया की परछाँई!

सुन सरिता की रलमल-झलमल!
आती क्या उनकी तरी चपल?
'चल री,' कहती मुखरा पायल,
'तट पिच्छल, जाएँ कहीं बिछल!'

मन, चुप हो जा—वह आते हैं!
ना, यह शशि पर घन की झाँई!

पुलकाकुल पल्लव गए डोल,
क्यों कुहुक कुहुक पिक रही बोल?
बेला की कलियाँ नयन खोल
बैठीं अबोल—यह क्षण अमोल!

मेरे मन में भी मुकुल खिले,
झर गईं कली ज्यों मुसकाईं!
मन रे, मंदिर के द्वार खोल
आते होंगे तेरे साँईं!

७

ये तुम्हारे स्वप्न!
ओह, कितने ढीठ हैं, प्रियतम, तुम्हारे स्वप्न!

ज्यों पलक छू मृदु अधर से
नींद दृग युग बंद करती,
सुनो, सहला माथ ज्यों ही
नींद दृग युग बंद करती,
खोल पलक-किवार आ जाते तुम्हारे स्वप्न !

जागती हूँ जब, न आते—
न आते—बस याद आते !
चाहती हूँ जब, न आते—
न आते—बस याद आते !
खेल करते सदा मनमौजी तुम्हारे स्वप्न !

'मीच तो लो आँख'—कहते
और फिर चुपचाप आते,
खोलती हूँ दृग कि इनको
पकड़ पाऊँ—भाग जाते !
हैं न क्या चञ्चल तुम्हीं से ये तुम्हारे स्वप्न ?

ये तुम्हारे स्वप्न !

८

रात रात जाग जाग,
चूर हुए गात गात,
दृग रतनारे !

छिन्न हुए तार हार,
अश्रुमग्न नयन-तार—
बाट जोह हारे !

भीज भीज सूख गए,
पीत ये कपोल भए,
रात के निदारे !

हृदय फूल बेला का,
रात भर अकेला था—
उन्हीके सहारे !

गए छोड़—फिर न मिले,
मुरझ गए फूल खिले—
पंथ में तुम्हारे !

सेज शून्य, गेह मौन,
धोर री बँधावे कौन ?
दूर प्राणप्यारे !

कह न गए आवन की,
निठुर मनभावन री—
दूर जा सिधारे !

रात रात नींद नहीं,
खड़ी रही कहीं कहीं --
मौन मन मारे ।

हरी भरी डाल डाल,
कली खिली लाल लाल,
भौंर कारे कारे !

रात रात जाग जाग,
चूर हुए गात गात,
दृग रतनारे !

९

मत हो उदास, ओ मन मेरे—
मैं हूँ तो तेरे पास !
दुर्दिन में आज बुझाले तू
खारे जल से ही प्यास !

ओ जपाकुसुम-से नन्हे मन,
ओ तपे हुए कंचन के कन,
गल कर बन तू आँसू पावन,
तू ढल, कुंदन, प्रिय-प्रतिमा बन,
ओ मेरे छोटे-से दर्पन,
दिखला उनका आभास !

मत हो मलीन, ओ दीप्त रतन !
मत मचल चटुल मछली-से मन !
मेरे बस में क्या है, नन्दन !
बहलाऊँ कैसे, कौन जतन ?

मुझको भी एक सहारा बस—
वह पटबिजना-सी आस !

जो तुझको रोता छोड़ गए,
वह मुझसे भी मुँह मोड़ गए;
हँस कर दुख कब तक कौन सहे—
यह मेरी तेरी होड़ रहे !
तू मुझको, मैं तुझको होने दूँ
मन, न अधीर निराश !

१०

मौना* मधु की प्यासी,
नैना दर्शन के अभिलाषी !

मौना मधु की हाट सजाती,
आँखें पिय के चित्र बनातीं;
फूल फूल पर मौना गाती,
आँखें उनको देख सिहातीं;

* शहद की मक्खी

मौना को फूलों की माया,
ये उनको छाया - सी !

मौना के हित धूप हँस रही,
इन नैनों में प्रीति बस गई ;
मधुरस में लिपटी जो मौना,
इनमें छबि सुकुमार रसमयी ;

मौना के दो पंख झलकते,
ये सूरज-चंदा-सी !

मौना मधु की प्यासी,
नैना दर्शन के अभिलाषी !

११

चहक रहे चिड़ियों के बच्चे
बाज रहीं जैसे पाजनियाँ !

आती हलकी ध्वनि छन छन छन,
मोह रही आकुल उदास मन,
मा ले आती चुन चुन कन कन ;

चोंच खोल चुप होते नन्हे,
देती मा चुग्गे की कनियाँ !

दोपहरी में सोया कानन,
जाग रहे मेरे विरही क्षण,
औ गौरय्या-सा मेरा मन;

आशा के नौ रतन चुगा कर
इसको समझाऊँ, साजनियाँ!

सोये आज समय के प्रहरी,
बहती जाती नदिया गहरी,
धारा में उतरी दोपहरी;

उछल रहे चाँदी के टुकड़े—
लहर नाचतीं, हँसतीं मणियाँ!

चहक रहे चिड़ियों के बच्चे,
बाज रहीं छन छन पाजनियाँ!

१२

दक्खिन देश उड़ें जब खंजन,
तुम चहुँदिशि उड़ जाना लोचन!
गए कहाँ मेरे मनभावन?
कुछ तो खोज बताना, लोचन!

मानससर से उड़ें हंस जब
सुनो प्राण, तुम भी उड़ जाना!

पहुँच प्राणधन के ढिंग-धोरे
मुझे वहीं की राह दिखाना!

मेरे पुलक, मुझे बतलाना—
अचक-अचक आवें जब साजन!

अरी बरुनियो! आँख मूँद लें
पीछे से आकर मोहन जब,
मैं गुलाब-सी मृदुल हथेली
पहचानूँ—कर देना संभव!

नासा! तू उस श्वास-सुरभि से
कह देना—आए मनभावन!

१३

ओ मेरे प्राणों से प्यारे!
सोचा भी तुमने कैसे जीते होंगे हम बिना तुम्हारे?

निशि बीती, बीतेंगे वासर—
वासर मास और संवत्सर!
लौटो, एक बार आओ. मैं
तुम्हें निहारूँ आँखें भर भर!
तुम बिन अँधियारे उदास होंगे सब जीवन-पाख उजारे!
ओ मेरे प्राणों से प्यारे!

खिलने को आतीं हैं कलियाँ
पूरी होने को इच्छाएँ;
कहो जगाईं क्यों ठुकरा देने
को मेरी अभिलाषाएँ ?
मिट्टी बन कर भी जी लेती, पर यों किसके संग-सहारे !
ओ मेरे प्राणों से प्यारे !

दीप लिए क्षण भर को आए,
चले गए तुम बिना बताए !
तम-प्रकाश का भेद सिखा देते,
निर्मम, पर बिना सताए !
ज्योति जगाई ऐसी, मन के सूर्य-चंद्र मेरे अँधियारे !
ओ मेरे प्राणों से प्यारे !

छू छू क्षितिज-छोर आओगे
फिर भी मेरी ओर न क्या तुम ?
चाहो जब तक और बढ़ालो,
निर्मम ! मेरी व्यथा-कथा तुम !
ओ मेरे मन मान, न रो, आँसू को धीरज-बाँध बना रे !
ओ मेरे प्राणों से प्यारे !

१४

उड़ गई जाने कहाँ मेरी चटुल मुसकान ?

नींद तो तुमने चुराई,
पर हुई यह क्यों पराई ?
मुझे मत देना बुराई,
जो कहीं उड़ जायँ ये मेरे दुखारे प्राण !

लौट आओ, पास आओ,
प्रीति की थी तो निभाओ,
यों न नाता तोड़ जाओ,
अभी बाक़ी हैं हृदय में बहुत से अरमान !

बुझेगा जब ज्योति-अंकुर,
मौन भी हो जायगा सुर,
कहो मेरे मीत, निष्ठुर !—
कब तलक गाऊँ अकेली मैं विरह के गान ?

१५

चौमुख दिवला बार—
धरूँगी चौबारे पै आज
सखी री, चौमुख दिवला बार !
जाने कौन दिशा से आवें मेरे राजकुमार !
सखी री, चौमुख दिवला बार—

जब जब पवन सँदेसा लावे,
दीये की लौ सौ बल खावे,
झाला दे दे पास बुलावे,
उझक देख मैं जानूँ मेरे आए राजकुमार !
सखी री, चौमुख दिवला बार—

देखूँ जंगल में पटबिजना*,
गगन बीच तारों का खिलना,
मैं जानूँ यह केवल छलना—
कौन कहे सचमुच आवेंगे मेरे राजकुमार !
सखी री, चौमुख दिवला बार—

होता दीप स्नेह से रीता,
आश-निराशा में दिन बीता,
मैं अनदेखे की परिणीता,
निर्मोही बन मोहे लेते मेरे राजकुमार
सखी री, चौमुख दिवला बार—

छीज रही तन-मन की बाती,
दीये-सी ही रात सिराती,
जीती तो फिर दीप जलाती,
कह भर देता कोई—आते मेरे राजकुमार !
सखी री, चौमुख दिवला बार !

* जुगनू

१६

वह आने वाले हैं !

मत मुरझा जाओ, मन-प्रसून, वह आने वाले हैं !

मुरझाने का अधिकार तुम्हें
पर केवल उनके चरणों में !
तुम चाहे सो करना—खिलना ,
मुरझाना—पर उन चरणों में !
तुम जिनकी थाती हो, प्यारे, वह आने वाले हैं !

ओठों पर की सूखी कलियाँ
उत्सुक हैं फिर मुसकाने को ,
देखो तो अटके हैं आँसू
आँखों में, उनके आने को ;
कोयों में रुके हुए मोती, पलकों ने ढाले हैं !

इस खिली चाँदनी को देखो ,
देखो मुसकाता आसमान ;
उस धुली नीलिमा में देखो
घुलने को कहते आज प्राण !
तुम सोचो तो इन प्राणों को भी कौन सँभाले हैं !

बालक मत बनो, हृदय मेरे !
मत पूछो वह कब आवेंगे ;
तुम अपनी धड़कन रोक स्वयं
पद-चाप सुनो वह आवेंगे !
मैंने पलकों पर, अधरों पर भी ताले डाले हैं !

वासर-मास

१

गया यों मधुमास, आया मधुर माधवमास,
और मिठबोली बनी सौरभ-भरी वातास!
शिशिर में थी जो जरा की शुष्क ठंढी साँस
बनी मुग्धा कुमारी की अब मधुर निश्वास!
बह रही वातास—गिरि-वन में मधुर वातास,
पी रहे तरु सहस साँसों में प्रिया की श्वास!
खिले रोमों में नए वनफूल—जाग अयास,
और काफल* फले जो फलते न बारह मास!
लाल लाल बुरूस† में खिल रही जिसकी आस,
धरा वह—ऋतुराज के खिंच और आई पास!
कामिनी सुधिसात् नूतन वर्ष आया जान,
कह गई चैत्रावली—'री, फलेगा मधुदान!'

२

गूँजती अमराइयाँ, आया रसिक वैशाख,
झुकीं गदरी आमियों से लदीं तरु की शाख!

* फ़ालसे की तरह का एक पहाड़ी फल।

† लाल रंग का एक विशाल फूल।

और खुल कर खेलती अब उत्तरीय बयार,
डालियाँ हिल-डुल रहीं ज्यों कह रहीं स्वीकार!
वह कुहुकने लगी थी यों तो लगा जब बौर—
मधुमुखी पिक का गया अब मधुर स्वर सध और!
दाघ के पहले प्रखर शर से विदीर्ण वसंत,
यहाँ आ गिरि-गोद में फिर बन गया श्रीमंत!
आज वैशाखी, उदित शशि कनकचम्पक-थाल,
कामिनी के अंग भी ज्यों कनकचम्पक-माल!

३

लाल एड़ी ज्यों पके दाड़िम, सिंदूरी आम!
नयनतार, कुचाग्र—काफल पके ज्यों घनश्याम!
आम की हर डाल झुकने लगी अब फल-भार
कामिनी भी नमित मुख, गति मंद, लघु-पद-भार!
जयन्ती नौरता जैसा पीत तन सोभार—
गई झुक स्वीकार कर ज्यों मातृपद-अधिकार!
दीप्ति तन की बढ़ी, मुख की श्री, बढ़ी दृग-कांति,
चपलता पद और उर की घटी, मन में शांति!
कांति केशों में लहर लेने लगी नव नित्य,
पूर्ण होती कामना करने लगी नित नृत्य!
हुए कोमलतर पृथुलतर अंग, पीला रंग;
जेठ आया, लगे खिलने पेवड़ी*-से अंग!

* चमकीले वसन्ती रंग की मिट्टी।

४

देश है यह, नीर नर-नारी जहाँ अति श्रेष्ठ;
शरत् ऋतु सम जहाँ सुखमय अग्निवर्षक ज्येष्ठ!
वायु गिरि की सुखद मृदु ज्यों रेशमी रूमाल,
घाटियों में आमियाँ पक हुईं पीन रसाल!
आम्रवन में पिक बुलाती मेघ को दे बोल,
गूँजते वह, बाल देते बोल पर फिर बोल!
और ऊँची घाटियों में लहलहाते धान--
चूमता जल हरित लघु पद—काँप उठते प्राण!
प्राणधन की सुधि कँपाती कामिनी के गात—
काँपती वह, काँपते ज्यों वायुदोलित पात!
गुदगुदाती नाभि के ढिंग चटुल सुधि नादान,
पार्श्व में भी; ओठ पर फिर बनी चल मुसकान!
तनिक में भर श्वास जाती, शिथिल होते अंग!
नयन मुँदते और खुलते—स्वप्न होता भंग!

५

वृक्ष, नभ औ मेघ-सब के रंग होते गाढ़,—
सिन्धु-शय्या छोड़ आया साँवला आषाढ़!
सुरमई मख़मल झगा की, लगीं झालर चार,
गोद में विद्युत विहँसती किलक बारंबार!

श्याम घन की छाँह में गिरि भी हुई घनश्याम,
क्षीर-सागर-सी बनीं सब घाटियाँ अभिराम!
मेघ किसके दूत हैं? है कहाँ अलकाधाम?—
कामिनी उत्सुक दृगों से देखती घन श्याम!
आँख मिच जाती अचानक देख चपल प्रकाश,
कड़कते हैं मेघ तड़काते अवनि-आकाश!
कोख पर धर हाथ वह भी मूँद लेती आँख—
मेघ उड़ जाते पलक में, खोल विद्युत-पाँख!

६

सुन प्रबल जल-घोष श्रवणों को हुआ आभास,
आगया निखरे रँगों से लसित श्रावण मास!
कहीं झीनी बूँद-बीनी यवनिका सुकुमार;
कहीं वह जलधार, जिसकी मंद्रव झंकार!
मेघ अब धौरा गए, नभ—सिन्धु सीमाहीन,
भास्करासन पर गगन में इन्द्र अब आसीन!
गूँजते अमराइयों में मेघ-मुग्ध मयूर;
कर्णकटु पर भले लगते बोलते शालूर!*
हुआ पिच्छल पथ, चली वह सहम सहज सयत्न—
खो न जाए कहीं मंजूषा-सुरक्षित रत्न!

* दादुर

७

भाद्रपद करता पदार्पण कर नदी - नद पार,
बादलों की तरी ले—कर पार पारावार!
बन गई है धरा आज पयोधरा पयभार,
गिरि पयोधर श्याम—जिनसे बहीं शत पय-धार!
गगन फ़ीरोज़ी, घटाओं के बहुत से रंग!
गगन में मृग, सिंह और गयंद चलते संग!
व्योम हँसता इन्द्रधनु में—बरस कर हर बार
और संध्या समय होती रँगों की बौछार!
किन्तु क्षण में मेघ घिरते फिर वही घनघोर
और लुक-छिप नाचती चपला—गगन की चोर!
पूर्णिमा का नभ हरितद्युत चाँदनी का सिन्धु,
बादलों के द्वीप जिनके पार तिरता इन्दु!

८

गए पावस मास जब, आया विहँस आसोज;
गगन खुल कर खिला ज्यों निर्मल सुनील सरोज!
चीड़ में भी फल लगे तो सेव की क्या बात!
लदे तरु फल-भार, तारों से भरी हैं रात!
शारदीया सोनजूही—कामिनी के गात!
और कुछ दिन, और वह बन जायगी अब मात!

एक दिन शरदिन्दु-सा ही इन्दु उसकी गोद—
खेलता होगा विहँसता ओर-पास समोद!
सरोवर की गोद में फैली-फली सौ बेल,
और तट पर काँस फूले, वायु करती खेल!
भार कितना मधुर—सुखमय मधुर कितना भार!
और कुछ दिन, मिलेगा जब मातृपद-अधिकार!

९

विहँस जब शरदिन्दु आया कृत्तिका के पास,
कहा हर्षित मही ने—'यह देख कार्तिक मास!'
सरोवर में कुँईं खिलती और मन में स्नेह,
चंद्रिका को देख कहतीं—'आज...होते गेह!'
सद्यस्नाता कुमारी धरतीं उमा का ध्यान,
बालतीं आकाशदीपक भाग्यतारा जान!
श्रीरमा-पूजन-निरत सब—अमावस्या आज,
शुद्ध गृह, पुर, नगर, जनपथ—सजे अग जग साज!
घास में सौ पुष्प खिलते, मंदिरों में दीप!
समुद भरदीं मोतियों से सुलक्ष्मी ने सीप!
कामिनी की क्रोड़ को मोती मिला जो एक,
सूर्य औ शशि करेंगे उसका कभी अभिषेक!

१०

मृगशिरस् यों ही मनोरम, किन्तु शशि के संग—
हुआ सुंदरतर—तरणिजा ज्यों, मिली जब गंग!
मार्गशीर्ष अनिन्द्य सुंदर, छत्र यह नक्षत्र,
दीखते नक्षत्र - शशि—झीने हुए तरु - पत्र!
पत्र झरते—पीत जैसे कामिनी के अंग,
नित्य खिलती जा रही वह मालती के संग!
फूल से फल की महत्ता अधिक—क्या संदेह?
इसलिए तो पुष्प से उत्तम हृदय का स्नेह!
चिड़चिड़ी कटु हो गई है शिशिर-सोरी वात,
किन्तु मीठी धूप सहलाती ठिठुरते गात!
दीखते जो शुभ्र घन नभ बीच—वे सित पंख,
दक्षिणापथ पर जिन्हें अब छोड़ जाते हंस!

११

नभ उन तरु-डालियों के पार है राकेश,
काढ़ता सौ अल्पना जो कामिनी के देश!
आज पूनो ने सजाए अवनि पर सौ साज,—
कामिनी की गोद में है खेलता शशि आज!
सफल उसकी तपश्चर्या, सफल उसका स्नेह—
जगमगाता शशिकला से आज सूना गेह!

एक वह आकाश का शशि, बढ़ाता जो दाह;
एक यह, मुख देख जिसका कहाँ सुख की थाह!
कामिनी की गोद में भी खेलता अब इन्दु,
लहर लेता आज मानस—क्षीर का ज्यों सिन्धु!
प्रीति शिशु की खींच लाई पिता को भी पास,
बनी यह कुटिया अवनि-शशि-सूर्य का आवास"!